।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।

तत्व-चरित्र

अ. पं. ब्रजवल्लभशरण

* श्रीसर्वेश्वरो जयति *

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

तत्व - चरित्र

निखिल महीमण्डलैदैशिक-यतिराजराजेश्वर जगद्गुरु श्री ११०८ श्रीनिम्बार्क भगवत्पाद प्रधान पीठासीन १००८ श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज के शिष्यों में से अन्यतम प्रसिद्ध सिद्ध श्रीतत्ववेत्ताचार्यजी महाराज का संक्षिप्त-

जीवन - चरित्र

लेखक-

निखिल महीमण्डलाचार्य चक्रचूड़ामणि श्री १००८

श्रीपरशुरामदेवाचार्य परम्परानुगामी विद्याभूषण-सांख्यतीर्थ

पं० श्रीव्रजवल्लभशरण

प्रकाशक--

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यचार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) किशनगढ, जि० अजमेर (राज०)

प्रथमावृत्ति वि० सं० १९९५ श्रीकृष्ण जयन्ती

श्रीविजयादशमी

वि० सं० २०६७ श्रीनिम्बार्काब्द ५१०६

॥ श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ॥

श्रीतत्त्वेत्ताचार्यजी महाराज और उनके साहित्य का संक्षिप्त परिचय

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य और श्रीराम-कृष्ण की भक्ति का स्वर्ण युग माना जाता है। उस शताब्दी में भक्तों का जैसा प्रवाह रहा वैसा अन्य शताब्दियों में नहीं रहा। इसीलिए उसे भक्तिकाल कहा जाता है। कवियों के आधिक्य के कारण बहुत से विद्वानों को तो उस शताब्दी के कई भक्त कवियों का पूरा-पूरा पता भी नहीं लग सका है। एक प्रदेश और एक सम्प्रदाय ही नहीं सभी प्रदेश और सभी सम्प्रदायों में उस समय भक्तों का आविर्भाव हुआ था।

भक्तिमती मीराँ जैसी राज महिला का जिस राजस्थान प्रदेश में आविर्भाव हुआ उसी मेड़ता के कुछ ही दूरी पर जयतारण के सन्निकट एक सिद्ध महात्मा वैष्णव भक्त कवि ठीक सोलहवीं शताब्दी के मध्यभाग में आविर्भूत हुए जो आगे चलकर "श्रीतत्त्व-वेत्ताचार्य" के नाम से विख्यात हुए। वहाँ की जनता आज भी नित्यप्रति प्रातः सायं श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण करती है।

जयतारण से थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा "फूलमाल" नामक ग्राम है। वहाँ एक भगवद्भक्त दाधीच (दायमा) ब्राह्मण सपरिकर निवास करता था। उसी कुल को श्रीतत्त्ववेत्ताजी ने अलंकृत

पुस्तक प्राप्ति स्थान--

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

द्वितीयावृत्ति २०००

मुद्रक--

श्रीनिम्बार्क - मुद्रणालय

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

न्यौछावर

सात रुपये

॥ श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ॥

श्रीतत्त्ववेत्ताचार्यजी महाराज और उनके साहित्य का संक्षिप्त परिचय

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य और श्रीराम-कृष्ण की भक्ति का स्वर्ण युग माना जाता है। उस शताब्दी में भक्तों का जैसा प्रवाह रहा वैसा अन्य शताब्दियों में नहीं रहा। इसीलिए उसे भक्तिकाल कहा जाता है। कवियों के आधिक्य के कारण बहुत से विद्वानों को तो उस शताब्दी के कई भक्त कवियों का पूरा-पूरा पता भी नहीं लग सका है। एक प्रदेश और एक सम्प्रदाय ही नहीं सभी प्रदेश और सभी सम्प्रदायों में उस समय भक्तों का आविर्भाव हुआ था।

भक्तिमती मीराँ जैसी राज महिला का जिस राजस्थान प्रदेश में आविर्भाव हुआ उसी मेड़ता के कुछ ही दूरी पर जयतारण के सन्निकट एक सिद्ध महात्मा वैष्णव भक्त कवि ठीक सोलहवीं शताब्दी के मध्यभाग में आविर्भूत हुए जो आगे चलकर ''श्रीतत्त्व-वेत्ताचार्य'' के नाम से विख्यात हुए। वहाँ की जनता आज भी नित्यप्रति प्रातः सायं श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण करती है।

जयतारण से थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा ''फूलमाल'' नामक ग्राम है। वहाँ एक भगवद्भक्त दाधीच (दायमा) ब्राह्मण सपरिकर निवास करता था। उसी कुल को श्रीतत्त्ववेत्ताजी ने अलंकृत

किया।* वि० सं० १५६० आश्विन शुक्ल ४ को आपका आविर्भाव हुआ, जन्म नाम त्रिविक्रम रखा गया, किन्तु कोई टीकमदास और बहुत से तीकोदास ही कहा करते थे। जन्म से ही आपका स्वभाव विरागी था। दया की तो वे साक्षात् मूर्ति ही थे, इसी दया के कारण उनकी कीर्ति पताका संसार में फहराई और उन्हें अपना घर त्यागना पड़ा। यह घटना इस प्रकार बताई जाती है--

इनके घर वाले खेती का कार्य करते थे। एक दिन इन्हें खेत पर भेज दिया वहाँ खेती में जल दिया जा रहा था। जल को मोड़-मोड़ कर क्यारियों में पहुँचाने के लिये इनकी नियुक्ति की गई। टीकमदासजी भी जल देने लगे। एक क्यारी में चींटियों के बहुत से बिल थे, उसमें चारों ओर चींटिया फिर रहीं थीं। टीकमदासजी ने सोचा, इस क्यारी में जल देंगे तो बहुत-सी चींटियाँ मर जायेगी, अतः उसमें उन्होंने जल नहीं दिया। कुछ समय पश्चात् जब उनके बड़े भाई की स्त्री ने वहाँ पहुँचकर देखा तो उसने विनोद में ही कह दिया-‘‘गृहस्थाश्रम में इतनी दयालुता कैसे निभेगी, यह तो साधु-सन्तों का कार्य है।'' टीकमदासजी ने उसी दिन से घर छोड़ दिया। माता, पिता, भाई, बन्धु और भाभी सभी ने बहुत कुछ विनय की, परन्तु वे अपने निश्चित पथ से

---

* पं० श्रीकिशोरदासजी ने आचार्य परम्परा-परिचय पृ० ३१ में इनका जन्म स्थान जयतारण और जाति गुर्जर गौड़ लिखी थी। किन्तु जयतारण पहुँच कर पता लगाया तो यह तथ्य ज्ञात हुआ, फूलमाल में आज भी तत्त्ववेत्ताजी के वंशज दाधीच ब्राह्मण हैं। श्रीगोपालद्वारा जयतारण के वर्तमान पुजारी श्रीवल्लभदासजी उसी घराना के हैं।

विचलित नहीं हुए। वे तीर्थ-यात्रा को चल पड़े और जहाँ तहाँ सत्संग करते, कथावार्ता सुनते और निरन्तर प्रभु का स्मरण करते घूमने लगे।

दैवयोग से इन्हें एक निर्गुण ब्रह्मवादी संन्यासी मिल गये। उन्होंने इन्हें निर्गुण ब्रह्म के रँग में रंगना चाहा, किन्तु उसका रंग इनके चित्त पर नहीं चढा, फिर भी ये उनका गुरुवत् सम्मान करते थे।

एक बार आप श्रीपुष्करराज जा पहुँचे, वहाँ परशुरामदेवाचार्यजी के दर्शन और उपदेशों से आप बहुत प्रभावित हुए। मन्त्रोपदेश (वैष्णवी दीक्षा) लेकर वे उन्हीं की सन्निधि में रहने लगे।* कुछ दिनों वाद एक बार फिर आप उसी निर्गुण ब्रह्मवादी संन्यासी के पास जा पहुँचे। उन्हें इनका वैष्णववेश देख कर कुछ ईर्ष्या हुई। गुरुदेव का पता पूछने पर इन्होंने सब कुछ बतला दिया। उन्होंने जल से भरा हुआ एक घड़ा देकर इनसे कहा--'जाओ, इसे अपने गुरुजी के पास पहुँचा आओ।' जब उसे लेकर ये श्रीपरशुरामदेवजी के निकट पहुँचे और दण्डवत् प्रणाम करके सब

---

* बाबा श्रीहंसदासजी ने श्रीनिम्बार्क प्रभा पृष्ठ ५९ में और पं० श्री किशोरदासजी ने आचार्य परम्परा परिचय पृष्ठ ३१ में यही अभिमत प्रगट किया है। किन्तु श्रीनिम्बार्क माधुरी पृष्ठ १२९ में उन्हें श्रीहरिव्यासदेवजी का शिष्य लिखा है। सम्पादक ने उसका उत्तरदायित्व ''श्रीनृसिंह, मन्दिर, होलीदड़ा, अजमेर के महन्त पर रखा है। क्योंकि उन्हीं के द्वारा ऐसा प्रकाशित करवाया गया था। इसकी समीक्षा श्रीसर्वेश्वर वर्ष ४ अंक २ (पृष्ठ १६-२१) में की जा चुकी है।

वृत्त सुनाया, तो उन्होंने एक सेर बतासे उस घड़े में डालकर कहा- 'जाओ, उन्हीं संन्यासीजी को दे आओ।' जब रस से भरे घट को लेकर तत्ववेत्ताजी संन्यासीजी के पास पहुँचे और सब वृत्तान्त सुनाया तो संन्यासीजी बड़े लज्जित हुए और पुष्कर पहुँचकर श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी से क्षमा याचना की।

तात्पर्य यह है कि वह संन्यासी महात्मा यह समझते थे कि निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान से जब मैंने इनका घट भर दिया था, फिर उसमें और क्या समा सकता था ? अतः परशुरामदेवजी का शिष्य बनने से इसे क्या लाभ हुआ। इसी भाव से उसने वह जल का घड़ा भेजकर प्रश्न किया था। उसका समाधान उन्होंने कर दिया। अर्थात् निर्गुण ब्रह्मज्ञान जल के समान है, और भक्ति-भावना बतासों के समान, जो ब्रह्म-ज्ञान को मधुर बना देती है, और उसी में समा जाती है। ब्रह्म-ज्ञान से चित्त के मल अवश्य धुल जाते हैं, किन्तु भक्ति भाव बिना रस की उपलब्धि नहीं होती, अतः ब्रह्मज्ञानियों को भी भक्ति की अपेक्षा रहती है।

श्रीतत्ववेत्ताजी की जीवनी बहुत विस्तृत है। उसका यह थोड़ा-सा अंश ही दिया गया है। सौ वर्षों तक इस धराधाम पर रहकर उन्होंने कैसे-कैसे लोकोपकार किये इस सम्बन्ध में जिज्ञासु-जन "श्रीगोपाल द्वारा जयतारण" महान्तजी द्वारा प्रकाशित इसी तत्वचरित्र को पढें। यहाँ अब केवल उनकी रचनाओं पर ही प्रकाश डाला जाता है। यद्यपि वे कुछ लिपि बद्ध रूप में भी मिलती हैं, तथापि बहुत सी ऐसी सूक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं जो वक्ताओं के मुख से ही सुनी जाती हैं। उनकी वाणी की प्रतियाँ जहाँ तहाँ मिलती हैं

वे सब प्रायः अपूर्ण ही देखने में आई हैं। जयतारण के श्रीगोपाल द्वारा में जो प्रति सुरक्षित है, वह यद्यपि अन्य सभी प्रतियों से बड़ी है, किन्तु पूर्ण नहीं।

१८४ पत्रों वाली इस प्रति के १४० पत्र बीकानेर में लिखे गये थे, जैसाकि उसकी अन्तिम पुष्पिका में लिखा हुआ है-- ''लिषितं बीकानेर मधे मथेन राधा-कृष्ण पठनारथी वैष्णव रतनदासजी, बाँचे सुनै जिनै राम रामः ।।श्रीकृष्णजी।।''

यद्यपि लेखक ने लिपिकाल का निर्देश नहीं किया तथापि ''पठनारथी वैष्णव रतनदासजी'' इस अंश से उसका पता चल जाता है। श्रीरतनदासजी वि० सं० १८४७ तक श्रीगोपाल-द्वारा जयतारण की गद्दी पर रहे थे। उनके पूर्व उनके गुरुदेव श्रीबालकदासजी वि० सं० १८२२ तक वहाँ महन्तपदासीन रहे। इस प्रति के लिखने के समय रतनदासजी महन्त पदासीन नहीं हुए थे, अन्यथा लेखक उन्हें केवल वैष्णव न लिखकर ''महन्त'' विशेषण के साथ उल्लेख करता। अतः वि० सं० १८२२ से पूर्व की यह प्रतिलिपि होनी चाहिये। कागज, लेख आदि के देखने से भी लिपि का यही समय निर्धारित होता है।

आगे के तीन पत्र वि० सं० १९७४ में लिखे गये हैं और ४१ पत्र एकदम खाली हैं। जिस प्रति से यह प्रतिलिपि की गई थी उसमें भी ''इतिश्री'' का उल्लेख न रहा हो या अन्य किसी कारण से लखेक ने ही इतिश्री का उल्लेख न किया हो। यह शोध पर आधारित है, किन्तु अपूर्णता निश्चित है, जिसका एक हेतु आरम्भ में विराट पुरुष वर्णन के ८४ छप्पय हैं, उनमें नाभि से चरणों तक का ही

वर्णन है। नाभि से ऊपर हृदय, मुख, नेत्र, भाल, मुकुट आदि का वर्णन भी अवश्य किया होगा। किन्तु किसी हेतु से वह इस प्रति में लिपिबद्ध नहीं हो सका। इसमें ७७४ ऐसे छन्द हैं, जिनमें थोड़े से कवित्त, सवैया और एक दो दोहा के अतिरिक्त सभी छप्पय छन्द हैं। ११७ से १३५ वें पृष्ठ तक धनाश्री, आशावरी, गौडी, सोरठ, भेरों, बिलावल, मारू, रामगिरी, सारङ्ग, नट, काफी आदि विविध राग रागनियों में गाने योग्य, ५२ पद हैं। इस प्रकार कुल ८२६ छन्दों की ग्रन्थ संख्या ३२०० श्लोकों के लगभग हैं। केवल पृष्ठ १४ पर "इतिश्री भाषा कवित्त तत्त्ववेत्ता कृत महापुरुष वर्णन प्रथम अंक १ । अथ द्वितीय।" ऐसी पुष्पिका मिलती है। इससे उनकी वाणी के कुछ विभागों का अनुमान होता है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रमाणित होता है कि उन्होंने संस्कृत आदि भाषाओं में भी रचनायें की थीं। पंजाबी मिश्रित रचनायें--"कान्हड एक तुम्हारी आसवे" "पिव करौं असाढ़ी सार वे" आदि पर इस प्रति में ही मिलते हैं।

संस्कृत रचनाओं में उनका एक "श्रीपरशुराम षट्श्लोकी" स्तोत्र प्रसिद्ध है, जो वि० सं० १५६६ की रचना है।* इस स्तोत्र में

---

* नमः कृष्णाय हंसाय निम्बार्कायाऽनिरुद्धतः ।
आचार्याय चतुर्व्यूह - परम्परा - प्रवर्तिने ।।१ ।।
निम्बादित्य - स्वरूपाय - हरिव्यास - स्वरूपिणे ।
श्रीमत्परशुदेवाय नमस्ते परमात्मने ।।२ ।।
वृन्दावन - निवासाय नमः षोडश-नामिने ।
नित्याय सत्स्वरूपाय भक्त-भूपाय ते नमः ।।३ ।।

उन्होंने श्रीपरशुरामदेवाचार्य को हंस, सनक, नारद, निम्बार्क और श्रीहरिव्यासदेव स्वरूप एवं उनकी परम्परा के प्रवर्तक आचार्य और अपना साक्षात् गुरुदेव कहा है। उस स्तोत्र से यह भी ध्वनित होता है कि श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी उस समय आचार्यपीठ (सलेमाबाद) एवं पुष्करराज की अपेक्षा श्रीवृन्दावन में अधिक निवास करते थे और वे सोलह नामों से प्रसिद्ध पाये हुए थे। इस स्तोत्र के पाठ का फल भी उन्होंने वृन्दावन वास ही बतलाया है।

इसकी पोषक कई एक परम्परायें मिलती हैं, उनमें से एक परम्परा ''श्रीसर्वेश्वर वर्ष २ अंक १०-११ पृष्ठ ७ पर प्रकाशित की गई थी। जिनमें श्रीहंस भगवान् से आरम्भ कर केशवकाश्मीरि के पश्चात् ऐसा स्पष्ट उल्लेख है--''श्रीभट्ट निखिल गुण-सागर, श्रीहरिव्यासदेव मुनि पुङ्गव। नमो जयति श्रीपरशुराम, श्रीतत्त्ववेत्ता

वेद-वेदान्त-पाराय ताराय युग्मरूपिणे ।
श्रीमत्परशुदेवाय गुरवे विभवे नमः ।।४ ।।
अनन्ताय नमस्तुभ्यं, परमानन्द-दायिने ।
श्रीमत्परशुदेवाय सर्वाचार्य - स्वरूपिणे ।।५ ।।
नमः कुमार - रूपाय, देवर्षिरूपिणे नमः ।
पार्षदाय नमस्तस्मै, योगेशाय नमो नमः ।।६ ।।
षट्लोकीमिमां दिव्यां, यः पठेत् साधु-सत्तमः ।
तस्य वृन्दावने वासो भवत्यत्र न संशयः ।।७ ।।

उदय का विशेषांक श्रीपरशुरामांक पृ० २। इस स्तोत्र की मूल हस्तलिखित प्रति स्वामी श्रीप्रयागदासजी के स्थल सूर्यपोल उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित बतलाते हैं।

जय। नमो परम अभिराम श्रीरामदामोदर अतिशय। नमो जयति श्रीरामदास नित्यानन्द जू।"

यह परम्परा थौलाई स्थान से सम्बन्धित है। जो श्रीतत्त्व-वेत्ताजी की परम्परा का एक विशिष्ट सम्मानित स्थल माना जाता है।

उनकी वाणी में भी कई स्थलों पर स्पष्ट उल्लेख मिलता है। श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी की कृपा से ही मेरी आत्मा निर्मल बनी और मुझे प्रसन्न आत्मा की अनुभूति हुई।[१] एक दूसरे छन्द में तो एकदम स्पष्ट कर दिया गया है कि--गुरुदेव श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी की कृपा से ही कृष्ण सम्बन्धी ये कवित्त मैंने रखे हैं।[२] इन सभी उद्धरणों के अनुसार श्रीतत्त्ववेत्ताजी के साक्षात् गुरु श्रीपरशुरामदेवा-चार्यजी ही थे। श्रीहरिव्यासदेव गुरु न होकर परम गुरु थे। जो सज्जन किसी विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिये तत्त्ववेत्ताजी को श्रीहरिव्यासदेवजी के साक्षात् शिष्य सिद्ध करना चाहते हैं उनकी कल्पना का जब कोई आधार ही नहीं मिलता, तब निराधार महल की दीवारें कैसे ऊँची उठ सकती हैं।

लिपिकारों ने लिपि करते समय किसी क्रम विशेष को

---

१. **तत्व बेत्ता तिहुं लोक में ज्ञान आत्मा गाइये।**
परसराम प्रसाद तै प्रसन्नातमा पाइये।।
(तत्व वाणी पृ० ५६ अमुद्रित)

२. **तत्ववेत्ता वो लग तहाँ रामचन्द्र सन्मुख रहे,**
गुरु परसराम परसाद ते कृष्ण कवित दीठा कहै।
(तत्ववेत्ता वाणी पृ० १३७ पदों के पश्चात् १६ वाँ छन्द)

नहीं अपनाया, जैसे सुना या लिखा हुआ मिला वैसी ही प्रतिलिपि कर ली गई, इसी से द्वितीय अंक के आरम्भ में वह छन्द लिखा गया जिसमें उन्होंने अपनी परम्परा के परमाराध्य श्रीसर्वेश्वर प्रभु का स्मरण किया है।*

यद्यपि अवतारी और अवतारों में श्रीतत्ववेत्ताजी ने भेद भावना नहीं की तथाऽपि परात्परता सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की ही उन्हें स्वीकृत है। श्रीनृसिंह आदि अन्य किसी का भी उस रूप में उन्होंने स्मरण नहीं किया, जैसा कि पूर्वोक्त दशावतारों के छप्पय से स्पष्ट होता है। उनकी निश्चत भावना थी कि श्रीसर्वेश्वर कृष्णगोपाल ही एक गुणग्राही भक्तवत्सल प्रभु हैं अतः उन्हीं का गुणगान करना चाहिये। केवल एक श्रीश्यामसुन्दर ही ऐसे हैं जो अपने भक्तों के मेरु जैसे अपराधों को भी अपने हृदय में तिनके के समान ही नहीं मानते हैं। और भक्त में गुण यदि एक तिल के समान भी हो तो उन्हें वे सुमेरु जैसा मान लेते हैं--

गुन ग्राही गोपाल श्रुति संमृति गुन गावै।
अवगुन गहे न एक वेद भागौत बतावै।।
दाणौं गुन ह्वै दास मेरु परवत सम मानै।
अवगुन मेरु समान ताहि दाणौ करि जानै।।
तत्ववेत्ता तिहुँ लोक में गुन ग्राही गुन गाइये।

---

* **सर्वेश्वर नटवर सदा बहुनामी बहु रूप धर,**
तत्ववेत्ता तिहुँ लोक में कृष्ण परम कल्याण कर।
(तत्व-वेत्ता वाणी पृ० १४)

अवगुन ग्राही अवर सब तिनके निकट न जाइये ।।

(पृ० ३४)

इसी प्रकार एक दूसरे छन्द में उन्होंने कहा है कि सर्वश्रेष्ठ श्रीश्यामसुन्दर के ही गुण गणों का ज्ञान करना चाहिये--

आदि अजावर अज इन्दिरावर अवतारा,
ऊषावर अनिरुद्ध इन्दिवर प्रान अधारा।
महा लछि वर मूल महा मुनिवर मधुहारी,
सीतावर श्रीराम सदा श्री वर सुखकारी।
तत्त्ववेत्ता तिहुँ लोक में गोपीश्वर गुन गाइये,
सुर वर नरवर स्यांँम को सुमिर २ सुख पाइये ।।

श्रीतत्त्ववेत्ताजी का समन्वयवाद उच्चकोटि का है।। छोटे से छोटे एक रज के कण को भी उन्होंने परब्रह्म से सम्बन्धित माना है। अनेकता के साथ-साथ एकता अनुभव करना ही सम्प्रदाय का भेदाभेद सिद्धान्त है। भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्त अवतार हैं अनन्त ही लीलायें और अनन्त ही रूप हैं उन सब में श्रद्धा रखते हुए उनके परम स्वरूप तक पहुँचना है। इसी दृष्टि से उन्होंने परम कृष्ण के परिचय की चर्चा की है--

गोकुल मंडन कृष्ण गोवर्धन धारी,
केवल कृष्ण कृपाल कृष्ण जादव सुखकारी।
पूरण ब्रह्म श्रीकृष्ण कृष्ण पुरुषोत्तम राया,
कृष्ण स्वयं भगवान सर्वघट मांहिं समाया।
तत्त्ववेत्ता तिहुंलोक में विविध कृष्ण विस्तरि रह्या
सर्वकृष्ण को सुमिरता परम कृष्ण परचै भया।।

आपकी रचनाओं में पद पद पर ओज का अनुभव होता है। वस्तुस्थिति और दृष्टान्तों का उल्लेख भी इतनी रोचकतापूर्वक हुआ है। कि जिससे अत्यन्त साधारण व्यक्ति भी उसे समझ कर आनन्दानुभूति कर सकता है, कंशवध के समय की स्थिति का वर्णन देखिये--

कंश केश गहि कान्ह मञ्च तैं धरनि धमकें,
शेष कमठ वाराह पुरुष मंढूक चमंकै।
औषध भार अठार शैल सायल सल सल्ले,
चंदभानु सुर राज शंभु ब्रह्मासन हिल्ले।
तत्त्ववेत्ता तिहुँ लोक में थावर जंगम थर हरे,
सागर नाव ठचकू जिमिं घर अंबर द्रुम थर हरे।।

(पृ० ३६)

बाल लीला के भी कई एक ऐसे ही सुन्दर सरस, एवं रोचक वर्णन मिलते हैं। प्रभु की इच्छा से ही समुद्र मथा गया था, उसमें देव और दानव केवल निमित्त मात्र थे। उस समय कच्छप को अपनी पीठ पर मंदराचल धारण करना पड़ा। लक्ष्मीजी को भी लज्जा हुई और शंकर को हलाहल पीना पड़ा, राहु का शिर कटा, सूर्य चन्द के साथ उसकी शत्रुता का बीजारोपण हुआ और असुरों की बड़ी क्षति हुई, केवल देवताओं को अमृत मिलने से हर्ष था। यशोदाजी के दही मथते समय जब पयपान के लिये श्यामसुन्दर ने नेती पकड़ी तो उन सबके हृदय दहला उठे जिन्हें समुद्र मन्थन के समय कठिनाइयाँ सहनी पड़ी थीं--इसी आशय की एक रचना देखिये--

कम्पित कूरम काय कलित कमला कुमिलानी।
शोचत सात समुद्र शम्भु मन शङ्का आनी।।
नौकुल नाग सभीत राहु जिय भयौ उदासा।
सर्व शैल सह कम्प स्वास बहु लेत उसासा।।
तत्त्ववेत्ता सुरगण हरष शोक असुर उर में भयौ।
बाल कृष्ण पय पांन कौ जब मही मथत नेतौ गह्यो।।
(पृ० ३६)

स्वसम्प्रदाय के वार्षिक उत्सवों का भी सूक्ष्म रूप से उन्होंने जैसा संकलन किया है वह परम्परा अनुसार उपादेय है--

आदि वसन्त अरु डोल रास द्वै सरस विलासा,
चन्दन रथ द्वै जात पाप परचन्ड विनासा।
राम कृष्ण नरसिंह विष्णु वामन व्रत कीजै,
विजय दशमी वंदि लोक में लाहौ लीजै।
अन्नकूट एकादशी चतुरविंशति चित सों करै,
तत्त्ववेत्ता तिहुँ लोक मैं नारि पुरुष सो उद्धरै।।

स्वउपास्य देव और उनके धाम के सम्बन्ध में व्रज वृन्दावन मथुरा को सर्वोत्कृष्ट कहा है--

मथुरा नगर महत् रूप गांउ गोकुल गुन राशी,
भूमि माँझ व्रज भूमि सृष्टि श्रेष्ठ व्रज के वासी।
ठाकुर केशवराय वन्न श्रेष्ठ वृन्दावनं,
तीरथ श्री विश्रान्ति शिखर श्रेष्ठ गोवर्धनं।
नदियन में जमुना नदी सर्वश्रेष्ठ सु मानसर,
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में व्रजरानी व्रजराज वर।।

-- -- -- -- --

वृन्दावन विस्तार कल्पतरु वृक्ष विराजैं,
कंचन भूंमि सुरङ्ग खचित मरकत मनि लाजै।
कामधेनु सब गाय स्रवत अमृत पय धारा,
सखा मंडली सहित कृष्ण जहाँ करत विहारा।
वारहमास वसन्त जहाँ निसि बासर फूलै फलै,
'तीकौ दास' निवास जहँ ध्यान निरन्तर ना टलै।।

उपास्य उपासक आराधना और धाम आदि के अतिरिक्त भक्तों के चरित्र पर भी उन्होंने पुष्कल रूप से रचनायें की हैं, जिनमें सभी युगों के भक्तों का उल्लेख है। यदि उनके इस संकलन में से भक्तमाल का विभाजन किया जाय तो नाभाजी के भक्तमाल जैसा ही स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध हो सकता है। नाभाजी ने स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि मैंने तो यह शिला (पूर्व रचनाकारों की रचनाओं में से ही चुन-चुन कर संग्रह) किया है।*

आधार की दृष्टि से पर्वतों की अपेक्षा समुद्र बड़े है। उनसे बड़ी पृथ्वी है। पृथ्वी से शेष बड़े हैं उनमें भी क्रमशः कूर्म-मण्डूक, ब्रह्म-जल एक दूसरे के आधार होने से उत्तरोत्तर बड़े हैं। जल की शक्ति उससे भी बड़ी हैं। जिससे कि जल का अस्तित्व बना हुआ है। उस शक्ति का आधार निराधार निरवलम्ब ब्रह्म है। वह सर्वाधार ब्रह्म भगवद्भक्तों के हृदय में रहता है, अतः भगवान् का भक्त ही

---

* भक्तदाम जिन जिन कथी तिनकी जूंठनि पाय। मौ मति सारुं अक्षर द्वै कीनौ सिलौ बनाय। भ० मा० (२१३)

सबसे बड़ा सिद्ध होता है, इस आशय को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है--

कूरम तैं मंडूक ब्रह्म जल अंतर्रि वासा,
जल तैं बड़ीज शक्ति शकति निरलंव निवासा।
तत्त्ववेत्ता निरलंब सो रामदास हिरदय रहै,
भगत बड़ो भगवन्त तैं सत्य शब्द सत् गुरु कहै।।

भगवद्विमुखों का उपहास भी उन्होंने बड़ी रोचक शैली से मार्मिक दृष्टान्तों के द्वारा किया है--जंगल में एक मुर्दा पड़ा हुआ था। उसकी गन्ध से कई श्रृगाल (गीदड़) दौड़े हुए आये। उनमें से एक श्रृगाल सबसे पहले पहुँचा किन्तु मृतक के हाथ पैर मुख सूंघ कर वापिस लौट आया। उसके साथियों ने पूछा--खाली ही क्यों लौट रहे हो ? उसने उत्तर दिया--इसने अपने जीवन में पैरों से तीर्थ यात्रा नहीं की। हाथों से कभी दान नहीं दिया। मुख से प्रभु का कभी भजन नहीं किया। ऐसे पापी का देह हमारे क्या काम का?-बस इसी से मैं सूंघ कर लौट आया--

भूखौ एक श्रृगाल मडौ भछिन इक पायौ,
हाथ पांई मुखि सूंधि धरनि पर उलटौ धायौ।
जंबुक जीव अज्ञान खाज की लाज न कीजै,
पिंड प्रान आधार उदर भर आहर लीजै।
तत्त्वेवत्ता तीरथ पगां हाथां दांन न कछु कियौ,
मुख मधुसूदन नां भज्यो तातैं आहार ना लियो।।

(पृ० ४७)

यद्यपि छप्पय छन्दों की अपेक्षा तत्त्ववेत्ताजी के रचे हुए

जंगल देश मे भी एक हजार आठ श्री परस रामदेवजी बिराजा
पीलू का झाड़ के नीचे, जाल का पेड़ के नीचे बिराजा, आसोज
महावस थावर के दीन, पादशा बादालसा के सेरसा की बारम
स्लेमसा, भाटी बीरसालजी के देवी सीग के आईदानजी
राईसीग की बारम समत १५५१ रे की सालम सलेम बादशाह
परसरामदेवजी, के हरबन्सदेवजी दुरसराम देवजी गाव
धोयानरना के स्थान बिराजा, ततवेताजी महाराज जेतारन
के स्थान बिराजा, पीताम्बर देव महाराज गाव चला
के स्थान बिराजा, लकड़देव जी महाराज कालपी बिराजा
गोरी सा बादसाह न परचयो दीनो, परसराम देवजी
महाराज साठी तीन सौ गाय, साठी तीन सो नाहर, काठल को नाहरा

रूपनगढ़, किशनगढ़, अजमेर (राजस्थान) के भाट श्रीसूरजकरणजी राव नारायणदासजी राव मंगलचंदजी राव की प्रामाणिक बही का निम्नाकिंत अंश अवलोकनीय है। इससे स्पष्ट है कि अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य–पीठाधीश्वर श्री परशुरामदेवाचार्यजी महाराज के अनेक शिष्यों में श्री तत्त्ववेत्ताचार्यजी महाराज भी शिष्य थे जिन्होंने जैतारण में श्रीगोपाल मन्दिर का निर्माण करवाया और वहाँ दीर्घकाल पर्यन्त निवास किया।

पद बहुत कम संख्या में मिले हैं तथापि उनमें सरसता विशेष है। यहाँ उनके कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं--बलवीर श्रीश्यामसुन्दर मान सरोवर के तीर पर जल क्रीड़ा कर रहे हैं। लील-पीले-नीले सरस सुगन्धित कमल खिले हुए हैं। सभी सखा और सखी वारि विहार में संलग्न हैं, युगल रूप में गौड मलार और सरस सारङ्ग आदि रागनियों के सुर अलाप रहे हैं। ताल, मृदङ्ग, मलार, झालर, उपंग और बड़े-बड़े निसान आदि वाद्य बज रहे हैं उन्हीं के साथ दादुर, मोर, पपीहा, कोकिल का मधुर-मधुर कूजन अत्यन्त मोहक लग रहा है। मेघ का मन्द-मन्द गर्जन, दामिनी की दमक और छोटी-छोटी बूँदों की वर्षा इन सबसे इतना अनुराग बढा कि सब तन्मय होकर सब संसार को भूल बैठे। मागध, सूत बन्दीजन मंगलाचरण गा रहे हैं और देवगण पुष्प बरसा-बरसा कर जय जयकार कर रहे हैं--

मुद्रित वाणी में ३४ वां पद--

विमल जल झूलत हैं बल वीर।
गिरधर लाल मनोहर नागर मान सरोवर तीर।।

-- -- -- -- --

''तीकौ दास'' कुसुम सुर बरसत उचरत जय जयकार।।

(पृ० १२०)

उद्धव और व्रज गोपी सम्वाद भी उनका अनूठा है। केवल गोपियाँ ही नहीं समस्त व्रजवासी ही उद्धवजी से कह देते हैं--मन वचन कर्म से हम सभी गोपाल-उपासक हैं। हमें योग की आवश्यकता नहीं है। जिस महल में श्यामसुन्दर विराजते हैं हम वहाँ की खवासी

करते हैं। आप उस बड़े हटवाड़े बाजार (काशी) में जाइये जहाँ आपकी ज्ञान रूपी वस्तु बिक सके। शून्य समाधी लगाने वाले परमहंसों के पास जाइये। यहाँ तो नवल नित्य निकुञ्ज में श्रीश्यामा-श्याम निरन्तर विहार करते हैं हम उन्हें नहीं छोड़ सकते क्योंकि हम सब जन्म-जन्मान्तरों से उन्हीं की दासी हैं--

जोग न लैहैं हम व्रजवासी।
मन क्रम वचन सदा सुनि मधुकर ? श्रीगोपाल उपासी ।।

-- -- -- -- --

"तीको दास" प्रभु क्यों छांड़े, जनम-जनम की दासी ।।

(पृ० १३१)

जोग न लैहैं हम व्रज नारी।
प्रान नाथ व्रजनाथ परायन सुमिरत कृष्ण मुरारी ।।

-- -- -- -- --

"तीको दास" विषय क्यों पीवै, अमृत को अधिकारी ।।

पुष्करराज में आचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज से दीक्षा लेकर तत्त्ववेत्ताजी महाराज बहुत दिनों तक वहाँ ही भजन साधन करते रहे। उस अवसर पर आपने कई साधकों को दीक्षा भी दी। श्रीतत्त्ववेत्ताजी ने जयतारण में अपना स्थायी निवास-स्थान स्थापित किया।

--व्रजबल्लभशरण वेदान्ताचार्य-पंचतीर्थ

आमुख

पौराणिक इतिहास से यह बात सप्रमाण सिद्ध है कि श्री १९०८ श्रीनिम्बार्क भगवान् भागवत धर्म के परम प्राचीन आचार्य एवं चक्रराज श्रीसुदर्शन के अवतार हैं अतएव भगवदवतार महर्षि श्रीव्यासदेवजी ने भी उक्त आचार्य चरणों में पूज्यभाव द्योतन किया है, क्योंकि ऋषियों तथा अम्बरीष आदि परम भागवतों पर जब दारुण विपत्तियां आई हैं तब श्रीनन्दनन्दन की इच्छानुसार आपही ने कभी भौतिक देह धर कर और कभी बिना ही प्राकृत विग्रह के अपने अमित प्रकाश से उन आपदाओं का निवारण किया है, आपके द्वापर कालीन अवतार के पश्चात् इस सत्सत्प्रदाय में और भी अनेकों भगवत्परिकर अवतीर्ण होकर धर्म का रक्षण किया है जिनके उपकारों से धार्मिक जनता सदैव ऋणी है, उससे मुक्त होने के लिये उनके गुणगणों के स्मरण के सिवाय अन्य कुछ सुगम साधन नहीं है, अतः स्मरणोपयोगी उन महापुरुषों के चरित्रों का प्रकाशित होना आवश्यक है, क्योंकि उनकी यशः सुधा के पानार्थ आज बहुत सी जनता छटपटा रही है, अतएव प्रभु प्रेरणा से उन धर्म प्राण आचार्यों की जीवन जाह्नवी के स्रोतों को प्रवाहित करने के लिये यह "तत्व-चरित्र" लिखा गया है। इसके सम्पादन में

महान्त श्रीजमुनादासजी महाराज (जैतारण) का पूर्ण सहयोग रहा है अतः आपको शतशोधन्यवाद देते हुये साम्प्रदायिक महानुभावों से अनुरोध करते हैं कि आप ऐसे-ऐसे स्रोतों से एक श्रीनिम्बार्क महानद प्रकट करके जनता की तृषा बुझावें, अन्यथा यदि इस अवसर पर ऐसा प्रयत्न न किया गया तो आप अपनी जनता से हाथ धो बैठेंगे और इस वृद्ध सम्प्रदाय को सर्वोच्च सिंहासन पर से उतार करके एक तिमिराच्छन्न कोने में ले बैंठेंगे। आशा है इस चरित्र जल कणों से साम्प्रदायिक जनता के कुम्हिलाये हुये हृदय कमल विकसित होकर अपनी सौरभ से हमें सन्तुष्ट करेंगे।

विनीत--

पं० श्रीव्रजवल्लभशरण

विद्याभूषण सांख्यतीर्थ

।। तत्व - चरित्र ।।

अर्थात्

श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज का

(संक्षिप्त जीवन चरित्र)

अनादि वैदिक सत्सम्प्रदाय-श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में अनेकों पूज्यपाद ऐसे महापुरुष होते आये हैं जिनकी दिगन्त व्यापिनी यशः पताका जब तक सूर्य चन्द्र रहेंगे तब तक दशों दिशा में अविच्छिन्न रूप से फहराती रहेगी क्यों न हो उसकी यशो वैजयन्ती का फहरान जिसमें कि श्रीमधुसूदन-कर-कमललालित कोटिसूर्यविकाशी चक्रराज श्रीसुदर्शन के अवतार स्वरूप भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य जैसे तेजोमय भगवद्विभूतियाँ इस पुनीत भारतवर्ष में प्रादूर्भूत होकर अज्ञान तिमिर महोदधि में डूबे हुये सांसारिक जीवों को अपनी प्रकाशात्मिका सुधा से सिञ्चित करके सत्पथ प्रदर्शन कराया। अतएव इसके प्रवर्तक तेजः स्वरूप होने के कारण यह सम्प्रदाय भी तेजः स्वरूप अर्थात् ज्ञान मूर्ति है।

जिस जिस समय-अज्ञानान्धकार की प्रबलता होती है और भागवत पथभ्रष्ट होने लगते हैं तब तब उनको सच्चा मार्ग बताने वाले तेजोमूर्ति भगवत् परिकर प्रकट हुआ करते हैं, और वे इस श्रीहंस सम्प्रदाय (अर्थात्-आदि अवतार भगवान् श्रीहंस प्रतिपादित द्वैताद्वैत सिद्धान्त) के अनुकूल आचरण करते हुये लोकों को प्रकाशित करके सच्चे धर्म की राह दिखला देते हैं और

सदा के लिये सर्वदुःखों से मुक्त कर देते हैं। ऐसे महापुरुषों में से एक श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज का शुभ नाम भी मारवाड ही क्याअपितु समस्त भारतवर्ष के सुयोग्य और धार्मिक सज्जनों के अन्तःकरण पटल पर अङ्कित हो रहा है।

आज हम भगवत्पाद जगद्गुरु श्री ११०८ श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र की प्रेरणा से उसी दिव्य विभूति की दिव्यजीवनी को स्वच्छ दलों पर अङ्कित करके भगवद्भक्तों के सामने उपस्थित कर रहे हैं। आशा है, आपके इतिहास से एवं आपकी पुनीत विचार धारा से धार्मिक सज्जन अपनी अन्तरात्मा को पावन बनाने की चेष्टा करेंगे। क्योंकि भगवान् और भगवद्भक्तों की जीवनी अर्थात् लीलायें सुधासलिल हैं, उनके पान से निसन्देह अमरता व्यक्त हो ही जाती है।

प्रादुर्भाव--

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी जबकि यह भारत वसुन्धरा यवनों से आक्रान्त हो रही थी, और भारतीय राजाओं का शासन प्रायः जा रहा था उसी कुटिल काल में जनता यह प्रतीक्षा कर रही थी कि इस वक्त प्रभु दयामय हम दीनों पर दया दृष्टि करके अपनी किसी दिव्य विभूति को प्रकट करें और हमें आश्वासन दिलावें। जब प्रभु ने आर्त जनों की विनय सुनी तब अपने निज परिकरों में से एक दिव्य विभूति को मरुस्थल में भेजी। उस दिव्य कला ने परमार्थ परायण महर्षि दधीचि के उत्तम कुल में मनुज रूप से जन्म लिया। जिस समय आपका प्रादुर्भाव हुआ दशों दिशाओं में सुख का श्रोत उमड़ उठा। और जनता की मानस सरिता सुखमय प्रवाहित

होने लगी।

आपने पुनीत आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की ४ चन्द्रवार को शुभ-अभिजित् मुहूर्त में श्रौतस्मार्त परायण भूदेव के गृह में प्रकट होकर-समस्त कुटुम्ब तथा नागरिक जनता और प्रान्तीय प्रजा को प्रकाशित किया। आप चन्द्रकला की तरह प्रतिदिन वर्धित होते हुए जीवों के उद्धार की चेष्टा करने लगे, जब प्रौढावस्था तक पहुँचे तो आप गृहाशक्ति को छोड़कर जीवों को उज्जीवित करने की चेष्टा करने लगे। आपके माता-पिता समृद्ध थे और बहुकुटम्बी भी थे। आपका जन्म नाम टीकमदास था।

विरक्त वेला--

एक दिवस आप अपने पिता से मिलने और देखने को पधारे जहाँ पर कि सेवक लोग कृषि में पानी दे रहे थे क्रीड़ा करते-करते आपने चाहा कि हम भी इन सुकुमार कोमल पौदौं को जलपान करावें, इस प्रकार जब जल पिलाने लगे तो कुछ देरी तक कई एक क्यारियों में पानी पहुँचाया, परन्तु एक क्यारी में बहुत सी चीटियों को देखकर उसमें जल नहीं छोड़ा और उसके आस-पास की सब क्यारियों में जल दे दिया, यह देखकर आपकी भौजी ने कहा कि यह क्यारी आपने क्यों छोड़ दी, तो टीकमदासजी ने उत्तर दिया कि इसमें जल देते तो ये इतने जीव मारे जाते।

भौजी कहती है कि यदि ऐसा अहिंसा व्रत रखते हो तो वैराग्य क्यों न ले लेते। अपनी भौजी के यह हास्य वचन सुनते ही घर से निकल कर आप जंगल में जा बैठे। परन्तु माता-पिता, भाई-बान्धवों ने आपके पास जाकर आग्रह पूर्वक कहा कि हे

प्राणप्रिय टीकम तुम मामूली मजाक से ही इतने चिड़कर हम सब कुटुम्बियों का परित्याग न करो इत्यादि बातें कहने पर आपने कहा कि आप सबों का सम्बन्ध एक रोज अवश्य टूटने वाला है तो फिर वृथा मोह में फँसकर पापों का बोझा अपने सिर पर किस लिये लूँ। आप जाइये मेरा और आपका सम्बन्ध आज तक का ही था अबसे मैं अपना सम्बन्ध उसी नन्दनन्दन के चरणों से जोड़ूंगा जिससे कि- वह सम्बन्ध कभी न टूटै। यह सुन कुटम्बी लोग अपने अपने घर आगये और आप अपने सच्चे कुटुम्बी की खोज में निकल गये।

दीक्षाकाल--

आप भ्रमण करते-करते कई एक मतामतान्तर वादियों से मिले और तत्त्व विचार करते रहे परन्तु आप का दिल नहीं भरा, अतएव किसी भी मत वाले से दीक्षा नहीं ली, जब फिरते-फिरते पुनीत तीर्थराज श्रीपुष्कर में पहुँचे तो वहाँ पर श्रीनिम्बार्क भगवत्पाद प्रधान पीठाधिपति जगद्गुरु श्री १००८ श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज (जो कि पुष्कर तट पर एक विशाल यज्ञ कर रहे थे) के प्रभाव को देखकर-आप के दिल पर सत्सत्प्रदाय की छाप जम गई, अतः आपने अहर्निश श्रीआचार्यचरणों की सेवा में रत रह कर आत्म समर्पण किया, और दीक्षा लेने की प्रार्थना की, आचार्य चरणों ने भी शिष्य की योग्यता देख कर दीक्षा प्रदान की।

एक समय आचार्यचरण विराजे हुये थे--और ये टीकमदासजी भी गुरु-चरणों की सेवा कर रहे थे, उसी अवसर पर एक कुष्ठ रोगी ने महाराज के पास आकर विलाप करते हुये अर्जी की कि प्रभो ! मैं कोढी हूँ मेरे दुःख को दूर करो,-आचार्य चरणों ने अपनी सुधा दृष्टि से उसके शरीर का सिञ्चन करके कोढी को

निरोग बनाया, तब पास बैठे हुये श्रीटीकमदास ने गुरु महाराज से अर्ज की, कि महाराज ! आत्मा तो निर्विकारी है-फिर इस प्राणी ने यह क्यों कहा कि मैं कोढी हूँ क्योंकि रोगादिक तो केवल २४ तत्त्वों के इस क्षण भंगुर कलेवर में ही होते हैं। अपने प्रिय शिष्य का वाणी को सुनकर आचार्यचरणों ने कहा कि--हे -अङ्ग यह पुरुष तत्त्वों का ज्ञाता नहीं, अतः इसको यही भान होता है कि ''मैं रोगी हूँ'' किन्तु सत्सङ्ग के प्रभाव से यह ज्ञान हो चुका है, इसलिये अब तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा तुम जावो और धार्मिक जनों को सदुपदेश करो।

अब तुम्हारा आज से तत्ववेत्ता नाम जगत् में प्रकट होगा। यह आशीर्वाद और आज्ञा पाकर श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज सर्वप्रथम अपनी जन्मभूमि की तरफ आये और फूलमाल ग्राम अपने जन्म स्थान पर ही परमात्मा का भजन करने लगे। आस-पास के दर्शनी लोग दर्शनों के लिये आने लगे और अपनी-अपनी कामनाओं को महाराज के आगे वर्णन करने लगे, महाराज उन सबों को यथोचित रूप से सन्तुष्ट करने लगे इन्हीं दिनों में जेतारण वाले सुजाजी राव के सुपुत्र राव ऊदाजी, महाराज के चरणों में आये और वैष्णवी दीक्षा ली विक्रम सं० १५९२ कार्तिक शुक्ल ५ के दिवस आपने शुभ मुहूर्त में पञ्चसंस्कार करके ऊदाजी को गृही वैष्णव बनाया, उसी दिन से आज तक ऊदाजी के वशंज समस्त ऊदावत सरदार श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज के प्रधानपीठ से दीक्षा लिया करते हैं।

प्रसिद्धि का समय--

विक्रम सं० १६१६ में अकबर बादशाह अजमेर आया। उस वक्त जोधपुर के राजा मालदेवजी थे, मालदेवजी के बाद वि०

सं० १६१९ में रावचन्द्रसिंहजी गादी पर बैठे, इनके दीवान आसरडाई वाले ऊदावत कल्याणदासजी थे। ये महाराज श्रीतत्ववेत्ता जी के पूर्ण भक्त थे।

वि० सं० १६२२ में अकबर का थाना जोधपुर पड़ा, जिसमें हुसेन कुली थानेदार था उसी समय राजा चन्द्रसिंहजी अकबर द्वारा गादी से च्युत किये गये। वे जोधपुर से निकल कर अपने दीवान कल्याणदासजी के साथ भाद्राजूण में रहने लगे।

कल्याणदासजी समय-समय पर श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज के दर्शनों के लिये आया करते थे, एक दिवस चन्द्रसेनजी ने दीवानजी से कहा कि आप अपने महाराज से पूछें कि हमारा जोधपुर का राज्य हमें वापिस कब मिलेगा।

दीवानजी किसी समय महाराज के चरणों में आकर वही अर्ज की कि चन्द्रसिंहजी का राज्य वापिस कब मिलेगा ?

महाराज ने अपनी इष्ट प्रेरणा से कहा कि चन्द्रसेनजी और उनके पैदा होने वालों को तो राज्य वापिस नहीं मिल सकता। किन्तु उनके छोटे भाई फलोदी वाले उदैसिंहजी को राज्य मिल जायेगा।

इस प्रकार के उत्तर पाने पर कल्याणदासजी चन्द्रसेनजी के पास जाकर जो बात महाराज ने कही थी कह सुनाई, राज्य न मिलने का उत्तर सुनकर चन्द्रसेनजी ने महाराज को एवं दीवान कल्याणसिंहजी को बहुत कुछ अनाप-सनाप बातें सुनाई और कल्याणसिंहजी को द्वेषदृष्टि से देखने लगे, कल्याणसिंहजी भी उनको छोड़कर अपने ग्राम आसरडाई में महाराज के पास ही रहने

लगे, परन्तु चन्द्रसेनजी बड़े क्रुद्ध होकर कल्याणदासजी को मारने के लिये आसरडाई पर चढाई करके आये और झगड़ा ठान दिया इस झगड़े में बहुत से सरदार काम आये एवं कल्याणदासजी के हितैषी नरसिंहदासजी ऊदावत भी परलोक पहुँच गये, अतएव कल्याणदासजी अपनी जागीर छोड़कर एकान्त पहाड़ पर जाकर रहने लगे।

कल्याणदासजी की दुःखदशा सुनकर महाराज श्रीतत्ववेत्ता जी के मुख से निकल गया कि--विना विचारे हरिभक्त को सताने वाले को जहर होगा। अर्थात्-हमारे यथार्थ उत्तर को तुमने विष के समान समझा और अपने हितैषी भक्तवर कल्याणदास पर इतना जुल्म किया अतएव तुम्हें विषरूपी फल ही प्राप्त होगा।

आखिर यही हुआ कि इनको एक रोज अपने मित्र की मेहमानी में जाना पड़ा पर दगा से विष होगया और ये मारे गये। इनके ३ पुत्रों से से उग्रसेनजी और आसकरणजी जो परस्पर में लड़कर मारे गये, और तीसरे पुत्र रायसिंहजी सिरोही जाकर सं० १६३६ में राव सुलतान की लड़ाई में मारे गये जनता महाराज के दो वाक्यों की सिद्धता (एक तो चन्द्रसेनजी एवं उनकी सन्तान को राज्य न मिलना और दूसरा चन्द्रसेनजी को विष होना) से दिन प्रतिदिन महाराज की कीर्ति का गान करने लगी। और महाराज का यश दूर-दूर तक जा पहुँचा।

फलोदी से उदयसिंहजी ने महाराज की कीर्ति को सुनकर अपने कुँवर सूरतसिंहजी को महाराज के चरणों में भेजकर पूछा कि महाराज आपके वचन थे कि उदयसिंह को राज्य मिलेगा किन्तु

अभी तक क्या कारण है कि दास को कुछ भी सिलसिला राज्य पाने का सुनने में नहीं आया, इस प्रकार विनय करने पर महाराज ने आज्ञा दी कि जावो नागौर चले जावो वहाँ पर अकबर बादशाह आरहा है उससे मिलो।

महाराज की आज्ञा सुनकर सूरसिंहजी ने अपने पिता को नागौर भेज दिया। उदयसिंहजी का और अकबर बादशाह का मेल हुआ। बादशाह प्रसन्न हुआ और मोटे राजा की पदवी देकर जोधपुर का राजा बना कर उदयसिंहजी को जोधपुर भेज दिया, किन्तु उदयसिंहजी पहिले फूलमाल आकर महाराज के चरणों में गिरे, और प्रार्थना की कि महाराज आपके चरणों की कृपा से राज्य मिला है अतः आप जोधपुर पधारें, दास आपकी आज्ञानुसार प्रजा का पालन करेगा।

ऐसी प्रार्थना सुनकर महाराज ने कहा कि तुम जावो धर्म पूर्वक राज्य करो बस इसी में हमारी प्रसन्नता समझो, यदि गोपाल कृष्ण की इच्छा होगी तो कभी फिर जोधपुर आयेंगे।

महाराज उदयसिंहजी गुरुदेव की आज्ञा को मस्तक पर धारण करके जोधपुर आगये और नीति पूर्वक राज्य करने लगे।

इधर महाराज की सिद्धाई के चमत्कार को सुन-सुन कर सिरोही मेवाड़ आदि प्रान्तों के राजा-महाराजा आने लगे और महाराज के दर्शनों से मुग्ध हो होकर अपने-अपने राज्यों में ले जाने के लिये महाराज से प्रार्थना करने लगे, किन्तु महाराज ने स्वर्ग से भी श्रेष्ठ अपनी जन्मभूमि को त्यागना नहीं चाहा, राजा लोग बहुत सा द्रव्य महाराज की भेंट करते थे किन्तु श्रीतत्ववेत्ताजी

महाराज उसको मिट्टी के समान जान कर छूते भी नहीं थे अपितु भूखे प्यासे साधु-ब्राह्मण और गौ आदि के निमित्त लगवा देते थे अतः दर्शनार्थियों की भीड़ दिन प्रतिदिन बढने लगी।

वि० सं० १६५२ में उदयसिंहजी के परलोक जाने पर उनके सुपुत्र सूरसिंहजी जोधपुर की राज्य गद्दी पर विराजे, परन्तु अभी तक नागौर, मेडता, जेतारण से तीन परगना इनके काबू में नहीं आ सके थे, अतः सूरसिंहजी महाराज के चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगे कि, अभी तक इतना हिस्सा मेरे कब्जे में नहीं आ सका। श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज ने मुसकुराकर कहा कि राजन्! यह आशा नदी अगाध है, इन तीन परगनों को ले लोगे फिर क्या तृष्णा की तृषा न रहेगी ? राजा लज्जा वश चुप हो गये। महाराज ने उनकी शान्ति देख कर कहा कि ५ पांच महीने के बाद तुम्हें तीनों परगने मिल जायेंगे।

राजा सूरसिंहजी धैर्य धारण करके जोधपुर गये, बस इन्हीं दिवसों में इनको बादशाह ने दिल्ली बुलवाया, ये भी कल्याणदासजी उदावत को अपने साथ लेकर के दिल्ली गये, बादशाह ने कहा कि दिल्ली की तलहटी वाले भौमियां सरकारी हुक्म की तामील न करके वे खिलाफी कर रहे हैं, इनकी तजवीज करें। महाराज सूरसिंहजी ने साम, दाम, दण्ड, भेद से उन भौमियों को बादशाह के अनुकूल बनाया, अतः खुश होकर बादशाह ने वि० सं० १६५३ में इनको तीनों परगने उपहार कर दिये। महाराजा सूरसिंहजी भी खुशी के साथ राज्य करने लगे। पहिले पुत्र न होने से महाराजा प्रायः खिन्न रहा करते थे। एक दिवस महाराज के

दर्शन करने को आये, दर्शन करके बैठे तो सूरसिंहजी के एक नेत्र में जल भर आया, महाराज ने उनकी दिली कामना समझ कर कहा कि पुत्र के लिये आप आये सो तो ठीक है किन्तु एक नेत्र में जल भर आया सो एक ही नेत्र वाला पुत्र होगा, राजा सुनकर सुखी हुये समय पाकर उसी प्रकार का एकाक्ष राजकुमार पैदा हुआ, जिसका नाम गलसिंहजी रक्खा। राजा साहिब के १६५२ कार्तिक सुदी ६ को राजकुमार हुये और १६५३ में तीनों परगने मिल गये। अतः महाराजा सूरसिंहजी ने सोचा कि जिनकी कृपा से राज्य मिला और वंश चला उन गुरुदेव की मैंने कुछ भी सेवा नहीं की।

अब चलकर सेवा करूँ ऐसा विचार करके फूलमाल आकर महाराज से वही अर्ज की, कि आज्ञा हो तो एक श्रीगोपाल कृष्ण का मन्दिर बनवा दिया जाय जिसमें कि परात्पर परब्रह्म आनन्दकन्द व्रजचन्द की प्रतिमा हो-और गुरु चरणों की पूज्य गादी स्थापित हो।

महाराजा की धार्मिक प्रार्थना को अङ्गीकार करके आचार्य चरणों ने आज्ञा दी कि जावो यदि ऐसी धार्मिक मठ बनाने की इच्छा है तो बनावो। आज्ञा पाने पर महाराजा सूरसिंहजी ने वि० सं० १६६६ माघ शुक्ल १५ को जेतारण में विशाल मठ बनवा के श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज के अर्पण किया। आचार्यचरण भी अपनी जन्मभूमि के निकट परमोपास्य श्रीगोपाल लाल की अर्चा में निरन्तर रत रहते हुए मठ की व्यवस्था मर्यादापूर्वक चलाने लगे।

किसी समय जेतारण का राज्य रतनसिंहजी ऊदावत करते थे किन्तु दैवगति से, यहाँ का राज्य इनके हाथ से जाता रहा, जब

इनके सुपुत्र कल्याणदासजी ने श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज की भक्ति की तो फिर से इनको रायपुर प्राप्त हुआ और कल्याणदासजी यहाँ का राज्य करने लगे, यद्यपि गूदड़ (नाथ) जो कि जेतारण में रहा करते थे, वे कल्याणदासजी पर कुछ टोना आदि करके इनका बिगाड़ करना चाहते थे परन्तु सब प्रकार भगवान् ने इन्हें सुरक्षित रखा और दिन प्रतिदिन इनका परिवार भी अच्छा बढने लगा। इनके समस्त वंशज श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज के प्रधान मठ से ही दीक्षा लेते आये हैं, एवं श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के अनन्य अनुयायि रहे हैं, इस समय भी रायपुर, नीमाज, रास आदि सभी बड़े छोटे ठिकाने इस मठ को अपना पूज्यतम गुरु स्थान मान रहे हैं।

जगद्गुरु श्री ११०८ श्रीनिम्बार्काचार्य प्रधान पीठाधिपति श्री १००८ श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी के अनेक प्रतापी शिष्य थे उन्होंने देश-देशान्तरों में साम्प्रदायिक मठों की स्थापना की, जिनमें से इस मारवाड़ प्रदेश के प्रचारक पांच शिष्यों को नियुक्त किया। प्रमुख श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी महाराज प्रधान गादी (सलेमाबाद) पर विराजे। और आपके अनन्तर आपश्री के पट्टशिष्य जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीनारायणदेवाचार्यजी महाराज अ० भा० श्रीनिम्बार्का-चार्यपीठ, सलेमाबाद में आचार्यपीठासीन हुए पश्चात् कुछ समय के लिए उदयपुर (मेवाड़) पधारना हुआ। वहाँ उदयपुर महाराणा श्रीजयसिंहजी के निमन्त्रण पर जयसमुद्र का शुभ मुहूर्त किया उसी अवसर पर आपके शिष्य श्रीहरिदासजी तथा इनके शिष्य श्रीप्रयागदासजी महाराज ने भव्य मन्दिर का निर्माण करा के श्रीद्वारकाधीश भगवान् की प्रतिष्ठा करायी जो वही स्थान

प्रयागदासजी का स्थल नाम से विख्यात है। इसी प्रकार उदयपुर में ही बाईराज का कुण्ड स्थान भी श्रीनारायणदेवाचार्यजी महाराज ने बनवाया और कुछ समय पर्यन्त वहाँ निवास कर आपश्री परमपद को प्राप्त हुए। आपकी समाधिस्थल चरणपादुका उदयपुर में स्थित है। आपके पश्चात् आपके पट्टशिष्य श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ सलेमाबाद पर आचार्य-पीठासीन हुए। श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज के शिष्यों में श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी महाराज निम्बार्काचार्यपीठ को सुशोभित किया तथा श्रीपीताम्बरदेवजी महाराज ने जयपुर राज्यान्तर्गत चला-पुरी को सुशोभित किया। श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज जैतारण और श्रीखेमदासजी जैतारण के निकट वीरोल में विराजे।

उक्त सभी महानुभावों ने सम्प्रदाय प्रचार द्वारा अच्छा देशोद्धार किया है। इस प्रान्त में श्रीतत्ववेत्ताचार्यजी महाराज की सुकीर्ति दिगन्त व्यापिनी और उनका आदर्श जीवन परम प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय ही है। श्रीतत्ववेत्ताचार्यजी महाराज ने और भी कई एक चमत्कारी कौतुक कृत्य किये थे किन्तु विस्तार भय से समावेश नहीं किये गये। आपने कई एक ग्रन्थ का भी प्रणयन किया है, जिनमें से कुछ उपलब्ध हैं। और कुछ काल प्रभाव से अप्राप्य हो गये, परन्तु इनकी रखी हुई वाणी एक अनूठा ग्रन्थ है जो कि श्रीतत्ववेत्ताजी की वाणी के नाम से प्रसिद्ध है और कई स्थानों में पाया जाता है। आप सोलवीं शताब्दी के अपराह्न काल में प्रादुर्भूत होकर सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम समय तक इस प्रान्त का प्रमोद बढाया और अन्त में अपनी विशुद्धकीर्ति को यहाँ

स्थापित करके एवं सुयोग्य शास्त्रवित् वैयाकरण श्रीगोविन्ददासजी अपने पट्टशिष्य को श्रीराधा गोपाल की सेवा सौंप कर श्रीआनन्द कन्द व्रजचन्द के परम धाम गोलोक की एक विभूति जा बने। आपके तपोबल से इस जेतारण स्थान पर आपके बाद आठ पुस्तों तक प्रसिद्ध सिद्ध होते रहे हैं, अतएव उनका चरित्र भी अत्यन्त संक्षिप्त रूप में यहाँ लिख देना उचित समझते हैं, ताकि पाठकों को यहाँ की वंश परम्परा का भी लाभ हो सके।

श्रीतत्ववेत्ताचार्यजी महाराज के द्वितीय शिष्य श्रीराम-दामोदरदासजी थे। ये तीर्थाटन करते हुये जयपुरराज्यान्तर्गत थोलाई पधारे और भक्तजनों के आग्रह से एक श्रीगोपाल मठ की स्थापना करके यहाँ निवास करने लगे, इनके दो शिष्यों में से बड़े श्रीनित्यानन्द जी महाराज अजमेर आये एवं अपने परात्पर गुरु तथा श्रीनिम्बार्काचार्य श्री १००८ श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज के चरणचिह्नों के अति समीप पुष्करराज में एक नृसिंहमठ बनाकर भगवत् भागवत सेवा में निरत रहने लगे। आपने अजमेर में भी एक नृसिंह मन्दिर बनवाया एवं आपके शिष्य प्रशिष्य भी बहुत हुये और मठ मन्दिर भी कई एक बनवाये।

ऐसे प्रतापी शिष्यों प्रशिष्यों ने श्रीनिम्बार्क भगवत्पाद प्रधानपीठ श्रीपरशुरामपुरी (सलेमाबाद) की कीर्तिलतायें समस्त संसार में व्याप्त बनाई।

(३) श्रीगोविन्ददासजी महाराज के-१ श्रीरामकृष्णदास जी सुयोग्य एवं प्रधान शिष्य हुये, यही जेतारण गोपाल मठ की गादी पर विराजे।

और दूसरे चरणदासजी--अच्छे महात्मा हुये आपने रावडिया वास में एक मठ की स्थापना की। ३ तीसरे-गोविन्दरामजी थे इन्होंने नीमाज में श्रीगोपालद्वारा की स्थापना की।

(४) श्रीतत्ववेत्ताचार्यजी महाराज के चतुर्थ पुस्त में- अर्थात् श्रीरामकृष्णदासजी महाराज के पट्टशिष्य श्रीरामचरणदासजी महाराज अच्छे प्रतापी महात्मा हुये। आप सदा श्रीबलराम के चरणों का ध्यान किया करते थे।

(५) श्रीरामचरणदासजी के प्रधान शिष्य पोहकर (पुष्कर) दासजी हुये आप दूरदर्शी एवं त्रिकालज्ञ सिद्ध पुरुष थे।

एक समय नीमाज ठाकुर साहिब ने दस्त तंगी के कारण पोहकरदासजी महाराज से प्रार्थना की कि अब क्या उपाय करें। महाराज ने कहा घबराओ मत अहमदाबाद में आपके पूर्व पुरुष का द्रव्य पड़ा हुआ है ले आवो, यह सुनकर ठाकुर साहिब श्रीअमरसिंह जी अचम्भा करने लगे--इतने ही में ब्राह्मण ने आकर कन्या के विवाह के लिये सहायता मांगी--और कहा कि सिर्फ एक पत्र आप अहमदाबाद के किले के प्रेतराज के नाम से लिख दो। ठाकुर साहब ने महाराज के वचनों पर विश्वास किया और रुक्का के द्वारा ब्राह्मण को धन दिलाया एवं आप स्वयं भी जाकर उस खजाने को ले आये।

श्रीरामचरणदासजी के द्वितीय शिष्य श्रीवल्लभदासजी द्वारिका प्रदेश में पर्यटन करते हुये सुदामापुरी आये और यहाँ के राजा साहिब की प्रार्थना से सींगडा ग्राम में बिराजें, आप वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध थे, अतः अपने गुरुदेव में बहुत निष्ठा रखते थे और

किसी कार्य को करते थे उसको गुरुदेव के भरोसे--अर्थात् राम भरोसे किया करते थे तो एवं औरों को भी यही कहा करते थे कि तुम सब कुछ काम राम भरोसे किया करो इसलिये जनता इनको राम भरोसेदास कहने लग गई थी। आप दीक्षा लेते ही पर्यटन करने लग गये थे और विक्रम सम्वत् १७२५ के आस पास वर्तु, कमण्ड, दोनों नदियों के बीच सींगडा ग्राम में तप करने लगे।

आपके उग्र तप से आकर्षित होकर यहाँ के राजा साहिब ने (पोरबन्दर नरेश ने) आपके चरणों में बहुत से रुपये और मुहरें भेंट की। आपने भी उसी समय वह सब द्रव्य ब्राह्मण साधुओं के भोजन में लगा दिया।

सुना जाता है कि एक समय पोरबन्दर और बड़ौदा इन दोनों स्टेटों में तनाजा हो रहा था--पोरबन्दर नरेश ने अपनी प्रजा को आदेश दे दिया कि इस विपक्षियों की जितनी जायदाद जो दबा सकेगा उसका वही अधिपति रहेगा। इस राजाज्ञा तथा गुरु कृपा के बल से सीगडा निवासियों ने भी उस समय गायकवाड़ के कई एक ग्राम हस्तगत करके एक मठ बनाया था जिसके कि अधिष्ठाता श्रीबल्लभदासजी थे। आप धन जन में आसक्ति नहीं रखते थे अतः आपने-कोई विरक्त निजी शिष्य नहीं बनाया था अतः श्रीनिम्बार्क भगवत्पाद वीथी पथिक श्रीउद्धवदेवाचार्य (घमण्डदेवजी) के द्वारा वाले श्रीनन्दरामदासजी को स्थान देकर स्वयं गोलोकाधिपति के ध्यान में निमग्न रहने लगे, तब से इस स्थान को घमण्डदेवजी के द्वारान्तर्गत मानते हैं, इसका विस्तृत इतिहास सप्रमाण पृथक् प्रकाशित किया जायगा। जो भाटों की पुस्तिका से मिला उसमें से

संक्षिप्त २ विवरण यहाँ सिर्फ तत्ववेत्ताजी महाराज की विभूतियों की सूचिमात्र लिखी गई हैं। वि० सं० १७८७ तक श्रीपोकरदासजी महाराज ने इस स्थान को सुशोभित रक्खा।

(६) श्रीपोकरदासजी के बाद श्रीबालकदासजी अच्छे प्रतापी पुरुष हुये आप श्रीगोपालकृष्ण की कृपा के एक सच्चे पात्र थे, अतः आपके वचन सिद्ध थे। वि० सं० १८२२ में जोधपुर महाराज विजयसिंहजी के राजकुमार फतेसिंहजी के एक ऐसी दुर्व्याधि हो गई थी कि वह सब प्रकार के इलाज कराने पर भी शान्त नहीं हुई, जब श्रीबालकदासजी महाराज के चरणों में लाकर डाला और राजा साहिब ने उसके शरीर पर अपना कर कमल फेरा और शान्ति से कहा कि जावो इब इसका शरीर काञ्चन समान हो जायगा बस फिर तो क्या था उसी समय जादू का सा चमत्कार हो गया, और जनता में महाराज का विशद यश चारों और फैल गया। महाराज फतेसिंहजी ने सुवर्ण के कड़े मोतियों की माला किरणियां (छत्र) नकारा और निशान इत्यादि लवाजमा महाराज श्रीबालकदासजी को भेंट किया-तब से (सं० १८२२ से) आज दिन तक जारी है।

(७) श्रीबालकदासजी महाराज के रतनदासजी प्रधान शिष्य वि० सं० १८४७ में गादी पर विराजे, इस जमाने में दक्षिणियों की दोड़े हुआ करती थी अतः उनसे रक्षा करने के कारण आपकी ख्याति समस्त प्रान्त में फैल गई थी जिससे कई एक रईस आपके शिष्य बन गये थे जिनमें से आसोप ठाकुर साहिब महेशदासजी ओर बीलाडा थाना के लोढा महकरणजी का नाम उल्लेखनीय है।

श्रीबालकदासजी भविष्यवेत्ता (अगमदर्शी) थे। एक

समय नीमाज ठाकुर साहिब सुलतानसिंहजी जोधपुर जा रहे थे। जाने के पहिले गुरुदेव के दर्शनार्थ जेतारण आये किन्तु ठाकुर साहिब को आते हुए जान कर श्रीबालकदासजी ने गोपालद्वारा के कपाट बन्द करवा दिये। ठाकुर साहिब ने कपाट खुलवाने की खातिर बहुत आवाजें दिवाईं, आखिर कपाट न खोलने से ठाकुर साहिब ने विचार किया कि चलो--समाधियों के दर्शन ही कर चलो। बस समाधियों के दर्शन करके जोधपुर चले गये, ठाकुर साहिब के जाने के बाद किंवाड खुले और लोगों ने आकर महाराज से पूछा कि महाराज ! आज यह क्या किया जो कि ठाकुर साहिब बिना दर्शन ही चले गये। महाराज ने कहा ठाकुर साहिब जोधपुर जाकर ३ दिनों में परलोक पहुँच जायेंगे और मृत्यु के समाचार सम्मुख कहने से खेद होगा, अतः हमने किंवाड बन्द करके इन्हें समझाया था किन्तु इनकी भावी ऐसी ही होने से इन्होंने बिना समझे बूझे जोधपुर प्रस्थान कर दिया सो जो भावी है सो होकर ही रहेगी। थोड़े ही दिनों के बाद वही समाचार आये कि सुल्तानसिंहजी जोधपुर पहुँच कर शान्त हो गये।

(८) श्रीरतनदासजी के बाद वि० सं० १९०० में श्रीरामदासजी गादी पर विराजे किन्तु ६ महीने के अनन्तर ही आप गोलोकधाम पधार गये।

(९) आपके बाद श्रीवृन्दावनदासजी बड़े सिद्ध महात्मा हुये, आपका समय सं० १९०० का है एक समय ये भजन कर रहे थे उसी समय रामपुरा के ठाकुर साहिब घीरतसिंहजी दर्शनार्थ आये आकर दण्डवत् प्रणाम किया किन्तु महाराज मौन थे सो कुछ

प्रत्युत्तर नहीं दिया। भजन का समय पूर्ण ही होने वाला था, ठाकुर साहिब दिल के अन्दर काले पीले हो रहे थे। मौन खुली और महाराज उठे। ठाकुर साहिब बोले कि आज कल तो महन्ताई के घमण्ड में अन्धे हो रहे हो जो कि आने वाले दीखते भी नहीं, इस पर महाराज ने जबाब दिया कि हम तो अन्धे नहीं किन्तु तुम सचमुच अन्धे हो ही गये ताकि कुछ उचित अनुचित को नहीं देखा, महाराज के वचन निकले कि ठाकुर साहिब के दोनों बाजार बन्द हो गये। आखिर प्रार्थना करने से महाराज ने मार्ग आदि देखने की शक्ति दी। आप गौ बहुत रखते थे और उनको प्रातःकाल दरवाजे से बाहिर निकाल कर कह दिया करते थे कि जावो किसी गरीब का नुकसान न करना और जबर्दस्त की जराअत से अपना पेट भर लेना। वह गौ जागीदारों की जराअत में नित्य व्रति चरा करती थी एक रोज रास ठाकुर साहिब आकर महाराज से पूछने लगे कि देखें आप की कितनी गऊवें हैं, हम यहाँ ही उनके चारे फूस का प्रबन्ध करवा देंगे ताकि जराअत में कोई तरह की क्षति न पहुँचे। महाराज ने कहा दरवाजे पर खड़े हो जावो और निकलती हुई गौऔं की शुमारी करलो, ठाकुर साहिब दरवाजे पर खड़े होकर देखते हैं तो क्या दीखता है कि एक गऊ और एक सिंह, एक गऊ और एक सिंह। ठाकुर साहिब चकित हो गये--गिनती करना कराना सब भूल गये और महाराज से माफी माँग कर रास को चले आये। श्रीतत्ववेत्ताजी महाराज से लेकर श्रीवृन्दावनदासजी तक ६ पुरुषा इस स्थान पर दिगन्त व्यापिनी कीर्तिवाले सिद्ध हुये, जिनके तपोबल से आज तक स्थान की मर्यादा का निर्वाह हो रहा है।

(१०) वृन्दावनदासजी महाराज के पश्चात् वि. सं. १९४८ तक शालिग्रामदासजी ने स्थान को सुचारु रूप से सुरक्षित रक्खा।

(११) शालिग्रामदासजी के बाद वि० सं० १९७३ तक रामसुखदासजी यहाँ की प्रतिष्ठा राजसी ठाट में जमाई।

(१२) श्रीराधिकादासजी

(१३) श्रीगिरिवरदासजी अच्छे विद्वान् और सच्चरित्र एवं आत्म गौरव वाले हुए वि० सं० १९८३ तक आपकी इस स्थान में स्थिति रही।

(१४) वर्तमान समय में श्रीजमुनादासजी यहाँ के प्रबन्धक हैं, आप अच्छे दर्शनी एवं गायन विद्या के एक यशस्वी व्यक्ति हैं, और आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता हैं, गिरिवरदासजी महाराज के किसी सुप्रबन्धक के न होने से कुछ दिन मठ की दशा शोचनीय सी हो गई थी, तब स्थान को अवनत देखकर रायपुर, रास, नीमाज आदिक ठिकानदारों ने ''अखिल महीमण्डलैक चक्र चूड़ामणि जगद्गुरु श्री ११०८ श्रीमन्निम्बार्क भगवत्पाद प्रधानपीठ परशुरामपुरी (सलेमाबाद) श्री १००८ श्रीजी श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यजी महाराज की चरण सन्निधि में प्रार्थना पत्र भिजवाया कि अपने स्थान के लिये किसी सुयोग्य व्यक्ति को भिजवावें, तदनन्तर योग्यता देखकर आचार्यचरणों द्वारा अपने कृपापात्र वैद्यवर श्रीजमुनादासजी नियुक्त किये गये अर्थात् जैतारण गोपालद्वारा पर भिजवाये गये तब से यह मठ पुनः पूर्ववत् उन्नति शिखर का अवलम्बन ले रहा है। सम्भव है हमारे नयन दल इस स्थान की प्रशंसनीय छटा का शीघ्र ही अनुभव करेंगे क्योंकि ऐसी संस्थाओं की उन्नति और अवनति

प्रबन्ध कर्ताओं पर ही निर्भर रहा करती हैं।

हम अपने उपास्यदेव-श्रीगोपालकृष्ण से यही प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! आप वर्तमान महान्तजी के लिये बुद्धियोग प्रदान करें। ताकि इनके द्वारा इस मठ की कीर्ति कौमुदी दशों दिशा में प्रफुल्लित हो।

एतदर्थ हम हमारे चरित्र नायक श्रीस्वामीपादों से भी करबद्ध प्रार्थना करते हैं एवं उनके गुणगणों को द्योतन करने वाले एक पद के द्वारा इस तत्व चरित्र की पूर्ति कर रहे हैं।

श्लोक--

श्रीमद्दैशिकराजमानसरः संवर्द्धितं वाचया,
तत्वातत्वविवेचनेऽतिनिपुणस्तत्वंगतस्तत्परः ।।
सोऽस्माकं हृदयाम्बुजेषु विशतुश्रीतत्ववेत्ताऽभिधः ।
विज्ञानं व्रजवल्लभस्य रुचिरां भक्तिं ददातु पराम् ।।१।।

अर्थ--जो तत्वातत्व-अर्थात् सत्य असत्य भेद अभेद आदि विषयों के निर्णय करने में अति चतुर एवं दैशिक राज श्री १००८ श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज के मानस सरोवर को अपनी वाणी से प्रहर्षित करने वाले श्री १०८ श्रीतत्ववेत्ताचार्य हमारे हृदय कमलों में ज्ञान रूप से प्रवेश होकर विज्ञान सहित श्रीनन्दनन्दन की पराभक्ति को विवर्द्धित करें।

जो सज्जन अर्थ समझ कर इस पद को पढेंगे वे श्रीआचार्य चरणों की कृपा से निःसन्देह भगवान् की भक्ति के भाजन बनेंगे।

शमिति।
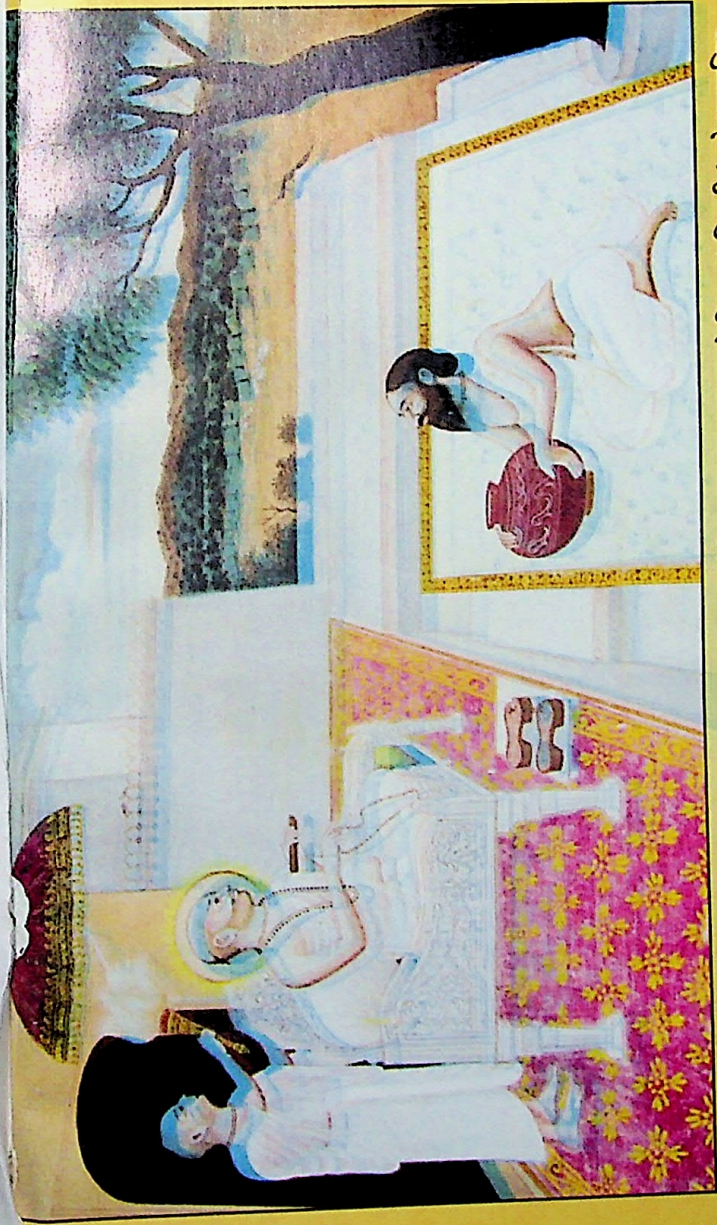
श्री तत्त्ववेत्ताचार्यजी के प्रथमोपदेशक एक यति द्वारा प्रेषित सजल-घट को सिता (मिश्री) से सम्पूरित करते हुए अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज